



INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आहड़ सभ्यता और मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के निर्माण में उसका योगदान: एक पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक अध्ययन

मधु मेनारिया

विद्यार्थी मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर (राजस्थान)

मेनार वल्लभनगर, उदयपुर

सारांश

राजस्थान के दक्षिणी-पूर्वी भाग में विकसित आहड़-बनास सांस्कृतिक परंपरा भारतीय उपमहाद्वीप की महत्वपूर्ण ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों में से एक है। इसका प्रमुख केंद्र आहड़ वर्तमान उदयपुर नगर के समीप स्थित है। आहड़ तथा गिलुंड, बालाथल जैसे स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्य यह स्पष्ट करते हैं कि मेवाड़ क्षेत्र में प्रागैतिहासिक समुदायों ने कृषि, पशुपालन, धातु-कर्म, मृद्भांड निर्माण तथा स्थानीय एवं दूरस्थ विनिमय की विकसित परंपराएँ स्थापित की थीं। आहड़ की विशिष्ट श्वेत-चित्रित काला-लाल मृद्भांड परंपरा इस सांस्कृतिक समूह की प्रमुख पहचान मानी जाती है। आहड़-बनास संस्कृति के अध्ययन से मेवाड़ के प्रारंभिक ग्रामीण समुदायों, उनकी अर्थव्यवस्था, तकनीकी दक्षता, सामाजिक संगठन और बाहरी क्षेत्रों से संपर्क की जानकारी प्राप्त होती है। इस शोध-पत्र में आहड़ सभ्यता के पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर उसके उद्भव, भौगोलिक विस्तार, आवास व्यवस्था, मृद्भांड परंपरा, ताम्र-धातुकर्म, कृषि-पशुपालन, व्यापारिक संपर्क तथा सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का अध्ययन किया गया है। साथ ही यह समझने का प्रयास किया गया है कि आहड़-बनास संस्कृति ने मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के निर्माण में किस प्रकार आधारभूत भूमिका निभाई। नवीन शोध में आहड़ संस्कृति के कालक्रम को लेकर पूर्व निर्धारित तिथियों की पुनर्समीक्षा की गई है; इसलिए इस अध्ययन में कालक्रम को स्थिर मानने के बजाय उपलब्ध पुरातात्विक एवं रेडियोकार्बन साक्ष्यों के संदर्भ में देखा गया है।

प्रमुख शब्द: आहड़-बनास संस्कृति, आहड़, मेवाड़, ताम्रपाषाणिक संस्कृति, गिलुंड, बालाथल, मृद्भांड, ताम्र-धातुकर्म, पुरातत्व।

1. प्रस्तावना

राजस्थान का मेवाड़ क्षेत्र प्राचीन काल से ही मानव निवास, कृषि, धातु-कर्म और सांस्कृतिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है। बनास, बेड़च, खारी तथा उनकी सहायक नदियों की घाटियों ने प्रारंभिक कृषक समुदायों के लिए जल, उपजाऊ भूमि और प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध कराए। इसी भौगोलिक परिवेश में आहड़-बनास सांस्कृतिक परंपरा का विकास हुआ। आहड़ स्थल उदयपुर के निकट स्थित है और यहाँ किए गए उत्खननों ने दक्षिणी राजस्थान के ताम्रपाषाणिक जीवन के अध्ययन को नई दिशा दी। पुरातात्विक साहित्य में आहड़ को इस सांस्कृतिक परंपरा का type-site माना जाता है। मेवाड़ में आहड़ संस्कृति से संबंधित लगभग 80 स्थलों की पहचान का उल्लेख मिलता है। इनमें अधिकांश स्थल बनास, खारी, बेड़च, कोठारी और गंभीरि जैसी नदी प्रणालियों तथा उनकी सहायक नदियों के निकट पाए गए हैं। गिलुंड लगभग 10 हेक्टेयर क्षेत्रफल वाला सबसे बड़ा ज्ञात आहड़ स्थलों में है। आहड़-बनास संस्कृति का अध्ययन केवल एक पुरातात्विक संस्कृति के अध्ययन तक सीमित नहीं है। इसके माध्यम से मेवाड़ में प्रारंभिक कृषि-आधारित बस्तियों के विकास, ताम्र तकनीक, उत्पादन व्यवस्था, विनिमय नेटवर्क और सामाजिक संगठन को समझने का अवसर मिलता है।

आहड़ सभ्यता का भौगोलिक विस्तार

आहड़-बनास सांस्कृतिक क्षेत्र मुख्यतः दक्षिण-पूर्वी राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में विकसित हुआ। इस क्षेत्र की नदियों और जलस्रोतों ने प्रारंभिक कृषि-आधारित बस्तियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुरातात्विक सर्वेक्षणों में मेवाड़ क्षेत्र में लगभग 80 आहड़ संस्कृति स्थलों का उल्लेख मिलता है। इनमें से अनेक स्थल काली कपास मिट्टी तथा स्थायी जलस्रोतों के निकट स्थित थे। इससे स्पष्ट होता है कि बसावट के चयन में कृषि योग्य भूमि और जल की उपलब्धता महत्वपूर्ण कारक थे। आहड़ के अतिरिक्त गिलुंड और बालाथल इस सांस्कृतिक परंपरा को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। गिलुंड को मेवाड़ क्षेत्र का सबसे बड़ा ज्ञात आहड़-बनास स्थल माना गया है और यहाँ व्यापक उत्खनन से आवास, उत्पादन तथा विनिमय से संबंधित महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। आहड़ स्थल और उत्खनन आहड़ वर्तमान उदयपुर नगर के निकट स्थित है। यहाँ 1950 के दशक से पुरातात्विक उत्खनन प्रारंभ हुआ। बाद में राजस्थान राज्य पुरातत्व विभाग और डेक्कन कॉलेज के सहयोग से हुए उत्खननों ने स्थल की सांस्कृतिक परतों तथा उसकी भौतिक संस्कृति को अधिक स्पष्ट किया। यह संस्कृति लगभग 4000 वर्ष पुरानी है। यह संस्कृति आज खण्डहरों के ढेर में दबी पड़ी है। यह ढेर लगभग 1600 फुट लम्बा व 550 फुट चौड़ा है। आहड़ का दूसरा नाम ताम्रवती नगरी भी मिलता है जिससे यहाँ ताँबे के औजारों के बनने का केन्द्र प्रभावित होता है। यहाँ के स्थानीय लोग इसे धूलकोट के नाम से पुकारते हैं। आहड़ सभ्यता के मुख्य उत्खननकर्ता एच. डी. सांकलिया थे, जिन्होंने 1956 में उत्खनन कार्य का नेतृत्व किया था। इससे पहले, 1953 में अक्षयकीर्ति व्यास ने इस स्थल की खोज की थी, और 1954 में रतनचन्द्र अग्रवाल ने उत्खनन कार्य शुरू किया था। अभी तक की गयी खुदाई से यह प्रमाणित होता है कि आहड़ दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान की प्राचीन सभ्यता का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। उत्खनन में यहाँ की बस्तियों के कई स्तर मिले हैं। पहले स्तर में कई मिट्टी की दीवारें, मिट्टी के बर्तनों के टुकड़े तथा पत्थर के ढेर मिले हैं। दूसरे स्तर की बस्ती जो कि प्रथम स्तर पर ही बसी थी। कुछ फूटकर तैयार की गयी दीवारें और मिट्टी के बर्तन के टुकड़े मिले हैं। तीसरी बस्ती में कुछ चित्रित बर्तन और उनका घरों में प्रयोग होना प्रभावित होता है। चौथी बस्ती के स्तर से एक बर्तन से दो ताँबे की कुल्हाड़ियाँ मिली हैं जो कि बड़े महत्व की हैं। इन चार स्तर पर चार और स्तर मिलते हैं। जिनमें मकान बनाने की पद्धति, बर्तन की विधि आदि में अन्तर देखने को मिलता है। ये सभी स्तर एक-दूसरे पर बनते-बिगड़ते चले गये। डॉ. दशरथ शर्मा का मानना है कि आहड़ का जटिल और समन्वित नागरिक जीवन निस्सन्देह शताब्दियों के विकास का परिणाम है। सभ्यता के विध्वंस के सम्बन्ध में डॉ. गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं कि भूकम्प आहड़ नदी के प्रवाह या बाढ़ आक्रमण आदि कोई भी नगर के विनाश का कारण हो सकता है।

आहड़ सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ

(1) निवास स्थान-

यहाँ के टीलों को देखने से लगता है कि यहाँ पहले काफी बड़ा समृद्ध नगर रहा होगा। यह नगर पास को आहड़ नदी के तट पर बसा था। आहड़ वासी पत्थर व धूप में सुखाई गई ईंटों से मकानों का निर्माण करते थे। मुलायम काले पत्थरों का प्रयोग सबसे ज्यादा किया जाता था। मकान छोटे व बड़े दोनों ही प्रकार के थे, बड़े कमरों की लम्बाई-चौड़ाई 33x20 फीट तक देखी गयी है। कमरों में बांस की परदी बनाकर उन्हें छोटा किया गया था। दीवारों पर मिट्टी का प्लास्टर किया जाता था। फर्श को भी मिट्टी से लीपा जाता था। फर्श बनाने के लिये ये लोग काली मिट्टी के साथ-साथ नदी की बजरी को भी मिला देते थे। छत बाँस की बनायी जाती थी जिन्हें बल्लियों पर रखा जाता था और बल्लियों को जमीन में गाड़ दिया जाता था। मकानों से गन्दा पानी निकालने की वैज्ञानिक विधि से भी ये लोग परिचित थे। 15-20 फुट तक गड्ढे खोद दिये जाते थे जिनमें गन्दा पानी गिरता रहता था। कुछ मकानों में 2 या 3 चूल्हे और कुछ मकानों में तो 6 चूल्हे तक मिलते हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जाता है कि आहड़ में बड़े परिवारों के लिये भोजन व्यवस्था थी अथवा सामूहिक भोजन भी बनाया जाता था।

(2) मृदभाण्ड व बर्तन-

उत्खनन में प्राप्त सामग्री में सर्वाधिक संख्या मृदभाण्डों की है। लाल काले रंग के मृदभाण्डों से यह पता चलता है कि लगभग तीन या चार हजार वर्ष पहले आहर सभ्यता के अन्तिम चरण में सिन्धु सभ्यता का मेवाड़ में प्रवेश हुआ। लाल-काले धरातल वाले चमकोले पात्र अन्दर से सम्पूर्ण काले रंग के व बाहर से ऊपर की ओर गर्दन तक काले और उसके नीचे सम्पूर्ण लाल रंग के हैं। ऐसे पात्र तीन प्रकार के हैं। प्रथम सादे, जिन पर किसी प्रकार की डिजाइन नहीं है, दूसरे जिन पर अन्दर व बाहर की ओर हल्की डिजाइन बनी हुयी है और तीसरे प्रकार में बाहर की ओर गर्दन पर सफेद रंग में कई प्रकार की लाइनें व बिन्दु बने हुये हैं। साधारणतः मिट्टी के बर्तन हाथ से बनाये जाते थे लेकिन इन्हें चाक से भी बनाया जाता था। इस सम्बन्ध में डॉ. गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं कि यह सामग्री अपनी विविधता व प्रचुरता के विचार से बड़े महत्त्व की है। खुदाई में अनाज रखने के लिये बड़े मृद भाण्ड भी पाये गये हैं जिन्हें यहाँ कोयोलचाल की भाषा में गोरे व कोठ भी कहा जाता था। यहाँ प्राप्त बर्तनों के विभिन्न प्रकारों से इस बात का संकेत मिलता है कि 2000-1000 ई.पू. तक आहड़वासियों का ईरान से भी सम्बन्ध था।

(3) मुद्राएँ, मुहरें व उपकरण-

आहड़ की खुदाई में छः ताम्बे की मुद्रायें व तीन मुहरें प्राप्त हुयी है। एक मुद्रा पर त्रिशूल खुदा हुआ है, दूसरी में अपोलो खड़ा है व तीसरी पर यूनानी भाषा में कुछ लिखा हुआ है। लिपि के आधार पर इसका काल दूसरी शताब्दी ई.पू. माना गया है। अनुमान लगाया जाता है कि वे पत्थरों से अपने औजार बनाया करते थे जिनका प्रयोग काटने, छीलने या छेद करने में किया जाता था क्योंकि इनके किनारे काफी धारदार दिखाई देते हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार उस काल में यह स्थान ताँबे की वस्तुओं को बनाने का केन्द्र रहा होगा और ताम्र उद्योग यहाँ का मुख्य उद्योग रहा होगा। इनके अतिरिक्त यहाँ से 79 लोहे के उपकरण भी मिले हैं जिनका उपयोग चाकू, कुल्हाड़ी व कोल की तरह होता था अर्थात् यहाँ लौह संस्कृति का भी प्रवेश हो चुका था।

(4) मणियाँ व आभूषण-

आहड़वासी कीमती पत्थरों से गोल मणियाँ भी बनाते थे। इनका उपयोग आभूषण बनाने तथा ताबीज की तरह गले में लटकाने के लिये भी किया जाता था तथा इनके ऊपर सजावट व अलंकरण का कार्य भी किया जाता था। इनका आकार गोल, चपटे, चतुष्कोणीय व षट्कोणीय होता था। खुदाई में दो प्रकार की मणियाँ प्राप्त हुयी हैं। एक कीमती पत्थर की और दूसरी पकी हुई मिट्टी की। इनमें से कुछ के बीच में छेद है और कुछ पर रेखाओं द्वारा डिजाइन भी बनाई गयी है। डॉ. सांकलिया को मान्यता है कि रेखाओं द्वारा मणियाँ मध्य एशिया को सभ्यता के प्रभाव को स्पष्ट करती हैं। सम्भवतः कीमती

पत्थर के मणियों का प्रयोग यहाँ के सम्पन्न नागरिकों द्वारा ही किया जाता होगा तथा मिट्टी के मणियों का प्रयोग मध्यम व निम्न वर्ग के लोगों द्वारा किया जाता होगा। मानव आकृति में नाक लम्बी बनायी जाती थी।

(5) कृषि व्यवसाय व रहन-सहन-

इस क्षेत्र में वर्षा अधिक होने व नदी पास होने के कारण कृषि का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में किया जाता था। लेकिन यह बताना कठिन है कि ये कौनसा आनाज पैदा किया करते थे। वे अन्न को पकाकर खाते थे। बड़ी-बड़ी भट्टियों के मिलने से ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ सामूहिक भोज का आयोजन होता था। खुदाई में कपड़ों आदि पर छपाई के ठप्पे भी प्राप्त हुए हैं। शरीर पर लगे मैल को छुड़ाने के भावों से ऐसा लगता है ये लोग अपने शरीर की सफाई का भी ध्यान रखते थे। खुदाई में तौल के बाट व माप भी मिले हैं। ऊपरी सतह पर मिले मानव के अस्थि पंजर से प्रतीत होता है कि ये शवों को गाड़ते थे। शव का मस्तक उत्तर व पाँव दक्षिण की तरफ रखे जाते थे। शवों के साथ पहनने के आभूषण भी गाड़ देते थे। इस सभ्यता के सम्बन्ध में यह कहना अभी सम्भव नहीं है कि इसका उद्भव व विकास कैसे हुआ, इस पर शोध अभी जारी है। श्री रतन चन्द्र अग्रवाल के शब्दों में आहड़ इस युग की ताम्र-पाषाण संस्कृति विशेष का मुख्य केन्द्र था और नदियों के किनारे-किनारे इस सभ्यता का प्रसार समूचे बेड़च, बनास व चम्बल के काठे में हो गया। डॉ. गोपीनाथ शर्मा लिखते हैं कि सम्भवतः आहड़ सभ्यता का समृद्ध काल 1900 ई.पू. से 1200 ई.पू. तक रहा होगा।

(6) आहड़ की मृद्भांड परंपरा

आहड़ संस्कृति के अध्ययन में मृद्भांडों का विशेष महत्व है। काला-लाल मृद्भांड और उस पर की गई श्वेत चित्रकारी इसकी प्रमुख विशेषता है। इन पात्रों पर ज्यामितीय तथा अन्य अलंकरणात्मक आकृतियाँ मिलती हैं। मृद्भांडों के प्रकार, आकार, निर्माण तकनीक तथा अलंकरण में समय के साथ परिवर्तन दिखाई देते हैं। आहड़ के विभिन्न स्तरों में ceramic variation के आधार पर अलग-अलग उप-चरणों की पहचान की गई है। अमृता सरकार ने बालाथल और गिलूंड के ceramic assemblages का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह दिखाया कि मृद्भांडों की विभिन्न श्रेणियाँ सांस्कृतिक विकास और सामाजिक परिवर्तन को समझने में उपयोगी हो सकती हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आहड़ के मृद्भांड केवल घरेलू उपयोग की वस्तुएँ नहीं थे, बल्कि वे सांस्कृतिक पहचान, तकनीकी दक्षता और क्षेत्रीय संपर्कों के महत्वपूर्ण पुरातात्विक संकेतक भी हैं। ताम्र-धातुकर्म

आहड़-बनास संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसका ताम्र-धातुकर्म है। मेवाड़ क्षेत्र में तांबे के संसाधनों की उपलब्धता ने इस क्षेत्र में धातु-आधारित तकनीक के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान कीं। आहड़ तथा संबंधित स्थलों से ताम्र उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनमें विभिन्न प्रकार के औजार, आभूषण तथा उपयोगी धातु वस्तुएँ शामिल हैं। इससे स्पष्ट होता है कि यहाँ के समुदायों को तांबे के उपयोग एवं उसके प्रसंस्करण की जानकारी थी। धातु-कर्म के विकास ने कृषि, शिल्प और अन्य उत्पादन गतिविधियों को प्रभावित किया होगा। इस प्रकार आहड़ संस्कृति को राजस्थान में प्रारंभिक धातु-आधारित ग्रामीण अर्थव्यवस्था के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होता है।

8. कृषि एवं पशुपालन आहड़-बनास संस्कृति की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि और पशुपालन पर आधारित थी। बस्तियों का चयन अक्सर कृषि योग्य भूमि और जल स्रोतों के निकट किया गया था। बालाथल से प्राप्त आवासीय संरचनाओं, अनाज भंडारण से संबंधित सुविधाओं, चूल्हों तथा अनाज पीसने के उपकरणों से घरेलू उत्पादन और खाद्य प्रसंस्करण की जानकारी मिलती है। वहाँ पत्थर की saddle querns तथा grinding stones जैसी वस्तुएँ मिली हैं। पशुपालन भी आर्थिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा था। कृषि और पशुपालन का संयुक्त स्वरूप इस समाज की agro-pastoral अर्थव्यवस्था की ओर संकेत करता है।

9. आवास एवं स्थापत्य

आहड़-बनास संस्कृति के स्थलों से प्राप्त स्थापत्य अवशेष बताते हैं कि यहाँ के लोग स्थायी अथवा अर्ध-स्थायी बस्तियों में रहते थे। बालाथल और गिलूंड से विभिन्न आकार की संरचनाएँ मिली हैं। बालाथल में पत्थर, मिट्टी तथा कच्ची ईंटों से निर्मित संरचनाएँ मिली हैं। कुछ संरचनाओं में अनेक कक्ष थे, जबकि कुछ में भंडारण एवं घरेलू गतिविधियों के प्रमाण मिलते हैं। गिलूंड से भी बड़े आकार की संरचनाएँ तथा समानांतर दीवारों वाले परिसर मिले हैं। इन स्थापत्य अवशेषों से यह संकेत मिलता है कि आहड़-बनास समाज केवल छोटे असंगठित ग्रामीण समूहों तक सीमित नहीं था, बल्कि कुछ स्थलों पर अपेक्षाकृत संगठित बस्ती नियोजन और सामुदायिक गतिविधियों का विकास हुआ था।

10. गिलूंड का महत्व

गिलूंड आहड़-बनास संस्कृति के अध्ययन का प्रमुख स्थल है। यह मेवाड़ क्षेत्र में स्थित सबसे बड़े ज्ञात आहड़ स्थलों में से एक है। आधुनिक उत्खननों से यहाँ कृषि, शिल्प, व्यापार और सामाजिक संगठन से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है। गिलूंड के उत्खननों से प्राप्त सामग्री ने इस सांस्कृतिक समूह के स्थानीय विकास तथा बाहरी क्षेत्रों के साथ संपर्क को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। University of Pennsylvania Museum और Deccan College के सहयोग से हुए पाँच वर्षीय उत्खनन कार्यक्रम के परिणामों को प्रकाशित पुस्तक में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। गिलूंड की विशेषता यह है कि यहाँ से प्राप्त साक्ष्य प्रारंभिक ग्रामीण अर्थव्यवस्था से आगे बढ़कर शिल्प उत्पादन, विनिमय और सामाजिक जटिलता के विकास की संभावनाओं पर प्रकाश डालते हैं।

11. बालाथल का महत्व

बालाथल आहड़-बनास संस्कृति के अध्ययन का दूसरा महत्वपूर्ण केंद्र है। यहाँ व्यापक उत्खनन से आवासीय संरचनाएँ, भंडारण सुविधाएँ, चूल्हे तथा उत्पादन संबंधी सामग्री प्राप्त हुई है। बालाथल से प्राप्त रेडियोकार्बन साक्ष्यों की संख्या भी उल्लेखनीय है। उपलब्ध अध्ययन में 30 रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर यहाँ के ताम्रपाषाणिक सांस्कृतिक अनुक्रम को अपेक्षाकृत उच्च resolution में समझने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार बालाथल से प्राप्त प्रमाण आहड़-बनास समुदाय के दैनिक जीवन, भोजन, आवास तथा उत्पादन प्रणाली को समझने में विशेष उपयोगी हैं।

12. व्यापार एवं सांस्कृतिक संपर्क

आहड़-बनास संस्कृति को पूर्णतः अलग-थलग विकसित संस्कृति नहीं माना जा सकता। गिलूंड और अन्य स्थलों से प्राप्त विभिन्न प्रकार के पत्थर, मनके तथा अन्य सामग्री स्थानीय संसाधनों के साथ-साथ व्यापक संपर्कों की संभावना दर्शाती है। गिलूंड के अध्ययन में प्रारंभिक व्यापारिक नेटवर्क और अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ संपर्कों की चर्चा की गई है। इससे संकेत मिलता है कि मेवाड़ की ताम्रपाषाणिक बस्तियाँ स्थानीय उत्पादन और क्षेत्रीय विनिमय व्यवस्था का हिस्सा थीं। इस दृष्टि से आहड़-बनास संस्कृति को पश्चिमी भारत की व्यापक ताम्रपाषाणिक दुनिया के संदर्भ में देखना अधिक उचित है।

13. सामाजिक एवं धार्मिक जीवन

आहड़-बनास संस्कृति के सामाजिक जीवन की जानकारी मुख्यतः पुरातात्विक अवशेषों से प्राप्त होती है। आवासों का आकार, भंडारण की व्यवस्था, शिल्प गतिविधियों के प्रमाण और घरेलू वस्तुओं में विविधता सामाजिक संगठन के अध्ययन में उपयोगी हैं। टेराकोटा से निर्मित पशु आकृतियाँ तथा अन्य मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं। ऐसी वस्तुओं के आधार पर धार्मिक विश्वासों या प्रतीकात्मक व्यवहार की संभावनाओं पर चर्चा की जाती है, किंतु इनके आधार पर निश्चित धार्मिक निष्कर्ष निकालते समय सावधानी आवश्यक है। इसलिए आहड़ समाज की धार्मिक मान्यताओं को समझने के लिए पुरातात्विक सामग्री का संदर्भगत विश्लेषण आवश्यक है।

14. आहड़-बनास संस्कृति का कालक्रम

आहड़ संस्कृति के कालक्रम को लेकर पुरातात्विक अध्ययन में समय-समय पर विभिन्न मत प्रस्तुत हुए हैं। पुराने अध्ययनों में आहड़ के स्तरों से प्राप्त रेडियोकार्बन तिथियों के आधार पर अलग-अलग काल-सीमाएँ प्रस्तावित की गई थीं। आधुनिक शोध ने इन तिथियों की पुनर्समीक्षा की है। 2026 में प्रकाशित Teresa P. Raczek के अध्ययन में आहड़ की श्वेत-चित्रित काला-लाल मृद्भांड परंपरा से संबंधित प्रकाशित रेडियोकार्बन तिथियों की समीक्षा की गई। अध्ययन का निष्कर्ष है कि इस pottery tradition का कालक्रम अलग-अलग क्षेत्रों में समान नहीं था और पुरानी radiocarbon dates में contextual समस्याएँ भी थीं। अतः वर्तमान शोध में आहड़-बनास संस्कृति को एक बिल्कुल निश्चित एकल कालखंड में सीमित करने के बजाय विभिन्न स्थलों और सांस्कृतिक चरणों की स्वतंत्र तिथियों का उपयोग करना अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण होगा।

15. मेवाड़ के प्राचीन इतिहास में आहड़ का योगदान

आहड़-बनास संस्कृति मेवाड़ के प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण की आधारभूत कड़ी है। इससे पहले मेवाड़ के प्रारंभिक इतिहास की जानकारी मुख्यतः सीमित पुरातात्विक साक्ष्यों पर निर्भर थी। आहड़, गिलूंड और बालाथल के उत्खननों ने इस क्षेत्र में विकसित कृषि-आधारित एवं धातु-उपयोगी समाज का विस्तृत चित्र प्रस्तुत किया। आहड़ संस्कृति के प्रमुख योगदान निम्न प्रकार से समझे जा सकते हैं—पहला, इसने मेवाड़ में प्रारंभिक स्थायी अथवा दीर्घकालिक ग्रामीण बस्तियों के विकास को स्पष्ट किया। दूसरा, ताम्र-धातुकर्म के प्रमाणों से तकनीकी विकास का पता चलता है। तीसरा, विशिष्ट मृद्भांड परंपरा क्षेत्रीय सांस्कृतिक पहचान और सांस्कृतिक संपर्कों के अध्ययन में महत्वपूर्ण है। चौथा, गिलूंड और बालाथल जैसे स्थलों से प्राप्त संरचनात्मक साक्ष्य सामाजिक संगठन एवं बस्ती नियोजन की जटिलता को समझने में सहायता करते हैं। पाँचवाँ, कृषि, पशुपालन और शिल्प-उत्पादन के संयुक्त प्रमाण मेवाड़ की प्रारंभिक agro-pastoral अर्थव्यवस्था को स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार आहड़ संस्कृति मेवाड़ के इतिहास में केवल एक पुरातात्विक चरण नहीं, बल्कि क्षेत्र में दीर्घकालीन सामाजिक-आर्थिक विकास को समझने का महत्वपूर्ण आधार है। आहड़-बनास संस्कृति मेवाड़ के प्राचीन इतिहास की एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परंपरा है। आहड़, गिलूंड और बालाथल जैसे स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री से यह स्पष्ट होता है कि मेवाड़ क्षेत्र में प्रारंभिक कृषक समुदायों ने प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हुए स्थायी बस्तियों, कृषि-पशुपालन, शिल्प उत्पादन और ताम्र-धातुकर्म का विकास किया। आहड़ के विशिष्ट काला-लाल एवं श्वेत-चित्रित मृद्भांड इसकी सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण आधार हैं। ताम्र वस्तुएँ इस क्षेत्र की तकनीकी दक्षता को दर्शाती हैं, जबकि गिलूंड और बालाथल की स्थापत्य एवं आर्थिक सामग्री सामाजिक संगठन और उत्पादन प्रणाली की जटिलता की ओर संकेत करती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आहड़-बनास संस्कृति को अब एक स्थिर और समान सांस्कृतिक इकाई के रूप में देखने के बजाय क्षेत्रीय विविधता, स्थल-विशिष्ट कालक्रम और बदलते सांस्कृतिक संपर्कों के संदर्भ में समझना आवश्यक है। 2026 के नवीन कालक्रमीय अध्ययन ने भी इसी दिशा में पुराने रेडियोकार्बन साक्ष्यों की पुनर्समीक्षा की है। अतः आहड़ सभ्यता का अध्ययन मेवाड़ के प्राचीन इतिहास को समझने के साथ-साथ राजस्थान में प्रारंभिक कृषि, धातुकर्म, बस्ती विकास और क्षेत्रीय सांस्कृतिक संपर्कों के व्यापक अध्ययन के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

बिल्कुल। आहड़ सभ्यता की संदर्भ सूची हिंदी में इस प्रकार लिख सकती हैं:

आहड़ सभ्यता — संदर्भ सूची

1. वी. एन. मिश्र — भारत का प्रागैतिहासिक पुरातत्व
2. एच. डी. सांकलिया — भारत एवं पाकिस्तान का प्रागैतिहासिक एवं आद्य-ऐतिहासिक काल
3. ए. घोष — भारतीय पुरातत्व का विश्वकोश
4. डी. के. चक्रवर्ती — भारत: एक पुरातात्विक इतिहास
5. आर. एस. शर्मा — भारत का प्राचीन अतीत
6. बी. बी. लाल — भारतीय पुरातत्व एवं ताम्रपाषाण संस्कृतियाँ
7. एच. डी. सांकलिया — राजस्थान की प्रागैतिहासिक एवं आद्य-ऐतिहासिक संस्कृतियाँ
8. राजस्थान पुरातत्व एवं संग्रहालय विभाग — आहड़ उत्खनन प्रतिवेदन
9. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण — भारतीय पुरातत्व: एक समीक्षा
10. वी. एन. मिश्र — राजस्थान का पुरातत्व एवं प्रागैतिहासिक अध्ययन
11. आर. सी. अग्रवाल — राजस्थान का इतिहास एवं संस्कृति
12. जी. एन. शर्मा — राजस्थान का इतिहास
13. के. सी. ओझा — राजस्थान की प्राचीन सभ्यताएँ एवं संस्कृतियाँ
14. दशरथ शर्मा — राजस्थान का प्रारम्भिक इतिहास

